RESEARCH REVIEW JOURNALS
Volume-04
Issue-02
February -2019

ISSN: 2455-3085 (Online)
RESEARCH REVIEW International Journal of Multidisciplinary
www.rrjournals.com [UGC Listed Journal]

सदियों के दर्द का पुनराख्यान: जूठन

बृज किशोर वशिष्ट

एसोशिएट प्रोफेसर, मोतीलाल नेहरू कॉलेज (सांध्य), दिल्ली विश्वविद्यालय , दिल्ली, भारत

ARTICLE DETAILS

Article History
Published Online: 20 February 2019

Keywords
जूठन, जाति, अस्पृश्यता, आत्मकथा.

***Corresponding Author**
Email: bkv_70@yahoo.com

ABSTRACT

ओमप्रकाश वाल्मीकि की आत्मकथा 'जूठन' इस अर्थ में विशिष्ट आत्मकथा है कि वह हिंदी दलित आत्मकथाओं में आरंभिक आत्मकथाओं में से एक होने के बाद भी अपने समय और समाज के वास्तविक बिंब उकेरती है। इसमें मनुष्य की अवमानना के अनेक रूपों को देखा जा सकता है। इस आत्मकथा की सफलता इस अर्थ में भी है कि इसमें अभिव्यक्त मनुष्य का दर्द व्यक्तिगत पीड़ा के एहसास से आरंभ होकर अंततः एकताबद्ध इकाई के रूप में परिणत होता है। लेखक के निजी दुखों के अनुभव व्यक्तिगत अभिव्यक्ति से ऊपर उठकर दलित मुक्ति आंदोलन के अस्त्र बनते दिखाई देते हैं। इसके लेखक में सत्य कहने का साहस , ब्राह्मणवाद का विरोध करने की क्षमता और श्रेष्ठताग्रंथि के विरोध में आवाज़ उठाने की शक्ति है। लेखक की यही विशेषताएँ उसे समता के पक्ष में खड़े रहने का अडिग साहस देती हैं।

दलित आत्मकथाओं का आधार किसी विख्यात व्यक्ति का जीवन चरित नहीं होता। इनमें आम आदमी की कथा , भीड़ में से एक अनजाने से चेहरे के चित्र और दैनंदिन घटनाओं की सूत्रबद्ध अभिव्यक्ति होती है। लेखक अपने जीवन की सामान्य घटनाओं को इस तरह से संयोजित करता है कि वे दलित मुक्ति आंदोलन के प्रस्तावित उद्देश्यों (समता की मांग , सामाजिक सम्मान , जाति-आधारित भेदभाव का समूल नाश और नई दुनिया का निर्माण) को संबोधित कर सकें। ज़ाहिर है , यह काम आसान नहीं है। आरंभिक आत्मकथाओं में तो कोई पूर्व-परंपरा न होने के कारण यह और भी अधिक मुश्किल हो जाता है। 1997 ई. में प्रकाशित ओमप्रकाश वाल्मीकि की आत्मकथा 'जूठन' इस अर्थ में विशिष्ट आत्मकथा है कि वह हिंदी दलित आत्मकथाओं में आरंभिक आत्मकथाओं में से एक होने के बाद भी अपने समय और समाज के वास्तविक बिंब उकेरती है। इसमें मनुष्य की अवमानना के अनेक रूपों को देखा जा सकता है। इस आत्मकथा की सफलता इस अर्थ में भी है कि इसमें अभिव्यक्त मनुष्य का दर्द व्यक्तिगत पीड़ा के एहसास से आरंभ होकर अंततः एकताबद्ध इकाई के रूप में परिणत होता है। लेखक के निजी दुखों के अनुभव व्यक्तिगत अभिव्यक्ति से ऊपर उठकर दलित मुक्ति आंदोलन के अस्त्र बनते दिखाई देते हैं।

अधिकांश दलित आत्मकथाकार अपने श्रम के बलबूते अब मध्यवर्ग में स्थान बना चुके हैं। एक तरफ इनके पास अपने बचपन की स्मृतियाँ हैं जिनमें ये सवर्णों के शोषण के शिकार बने तो दूसरी तरफ इन्होंने अपने व्यक्तिगत प्रयासों के द्वारा भारत के 'महान मध्यवर्ग ' में स्थान पाया। मध्यवित्त के अपने आरंभिक जीवन में इन्होंने अपनी पुरानी स्मृतियों को भुला देना चाहा और सामान्य नागरिक की तरह जीवन जीने का प्रयास किया , लेकिन इन्हें यह समझते देर नहीं लगी कि आर्थिक तरक्की कर लेने पर भी इनकी सामाजिक स्थिति वही है जो इन्होंने बचपन में भुगती थी। जूठन में कई स्थलों पर ऐसी स्थितियों को देखा जा सकता है। उदाहरण के लिए लेखक और उसकी प्रेमिका सविता के बीच हुए संवाद को देखिए –

> "मैंने साफ शब्दों में कह दिया कि मैंने उत्तर प्रदेश के 'चूहड़ा' परिवार में जन्म लिया है।
> सविता गंभीर हो गई थी। उसकी आँखें छलछला आईं। उसने रुआंसी होकर कहा, "झूठ बोल रहे हो न?"
> "नहीं सवि.....यह सच है.....जो तुम्हें जान लेना चाहिए....." मैंने उसे यकीन दिलाया था।

वह रोने लगी थी। मेरा एस.सी. होना जैसे कोई अपराध था। वह काफी देर तक सुबकती रही। हमारे बीच अचानक फासला बढ़ गया था। हजारों सालों की नफरत हमारे दिलों में भर गई थी। एक झूठ को हमने संस्कृति मान लिया था।" [1] स्पष्ट है कि समाज में बराबरी का दर्जा न मिलने के कारण लेखक को अपना अलग रास्ता चुनने के लिए मजबूर होना पड़ा।

जाति व्यवस्था भारतीय समाज की विशिष्ट प्रथा है। संसार के किसी अन्य भूभाग में इस तरह की प्रथा का चलन नहीं है। डेविड जी. मेण्डेल्बोम के अनुसार , "जाति प्रथा वह एक है जो स्तर वाले लोगों के समूहों से बना है। इसके किसी समूह में सदस्यता केवल जन्म के माध्यम से होती है। समूह अपने आप में पूर्ण, विशिष्ट हैं। कोई भी केवल एक समूह का सदस्य रह सकता है, केवल एक का। इसी से वह स्पष्ट रूप से दूसरों द्वारा अपने अलग समूह के सदस्य के रूप में पहचाना जाता है।"[2]

RRIJM 2015, All Rights Reserved

ओमप्रकाश वाल्मीकि के मन में अपनी जाति को लेकर किसी भी प्रकार का हीनताबोध नहीं है। वे दलित बुद्धिजीवियों के मन में छिपी इस भावना से एकदम मुक्त है। दलित साहित्य के विषय में उनका मत है , "दलित साहित्य में जन्मना जातिगत पूर्वाग्रहों के खिलाफ विद्रोह का भाव है। सामाजिक धार्मिक जीवन में स्थापित मूल्यों को खंडित करने की चेतना है। इसीलिए लंबी दासता से भरे जीवन की अमानवीय स्थितियों से मुक्त होने की छटपटाहट दलित साहित्य में बखूबी देखी जा सकती है।" [3] जूठन में लेखक ने अपने समाज में फैली कुरीतियों-अंधविश्वासों का खुलकर चित्रण किया है। इनमें से अधिकांश कुरीतियाँ व्यवस्थाजन्य हैं। उदाहरण के लिए ससुराल गए हिरम सिंह के साथ घटित 'सलाम' करने वाली घटना को देखा जा सकता है। ढोल के साथ हिरम सिंह और ओमप्रकाश दुल्हन की माँ और कुछ अन्य स्त्रियों के साथ सवर्णों के घर-घर जाते हैं। हिरम सिंह हर दरवाजे पर सलाम करता है। उसकी सास हर घर से कपड़ा या बर्तन मांगती है। हर दरवाजे पर उसका अपमान होता है। कहीं पानी तक पीने को नहीं मिलता। लेखक ने लिखा है कि उनकी पहल पर ही उनके परिवार से इस प्रथा का अंत हुआ।" [4] सलाम शीर्षक से ही लेखक ने एक कहानी भी लिखी है।

ओमप्रकाश वाल्मीकि इस बात को बखूबी समझते हैं कि अंधविश्वास, अज्ञानता और भाग्यवाद जैसी बीमारियों से लड़ने का एक ही अस्त्र है-शिक्षा। इस संदर्भ में हम जूठन को अद्वितीय रचना कह सकते हैं। शिक्षा के प्रति ओमप्रकाश वाल्मीकि का जो दृष्टिकोण हैं वह बहुत कुछ डॉ.भीमराव अंबेडकर से प्रभावित है। डॉ. अंबेडकर ने बुद्ध के शब्दों को दोहराते हुए कहा था कि, "अपने मार्गदर्शक खुद बनो। अपनी विवेकबुद्धि का आश्रय लो। दूसरों की मत सुनो। दूसरों के दबाव के आगे आत्मसमर्पण मत करो। सत्यवादी बनो। सत्य का आश्रय लो।" [5] स्कूल में अनेक प्रकार की यंत्रणा भोगने के बाद भी बालक ओमप्रकाश की शिक्षा के प्रति आस्था में कमी नहीं आती। हेडमास्टर कलीराम द्वारा पूरे स्कूल में कई दिन झाड़ू लगवाने के बाद भी ओमप्रकाश को यही लगता था कि कल से मैं कक्षा में पढ़ सकूँगा। खैर ऐसा हुआ नहीं। उसके पिताजी द्वारा गाँव के प्रधान से मिन्नतें करने पर ही ओमप्रकाश कक्षा में बैठ सका। एक अन्य प्रसंग में सूरजभान तगा के बेटे बृजेश के बेटे द्वारा कीचड़ में धकेल दिये जाने पर भी अपने पिता के कथन को याद करके शिक्षा के प्रति लेखक अपनी आस्था को डगमगाने नहीं देता। वह लिखता है , "स्कूल के नल पर मैंने हाथ-पाँव धोए थे। किताबें , कॉपियाँ धूप में सुखाई थीं। मेरा मन बहुत दुखी हो गया था उस रोज। लग रहा था जैसे पढ़ना लिखना अपने हिस्से में नहीं है। लेकिन पिताजी का चेहरा सामने आते ही उनकी बातें याद आने लगी थीं , 'पढ़-लिखकर जाति सुधारनी है। "[6] शिक्षा के महत्त्व की यह समझ इस आत्मकथा को अन्य दलित आत्मकथाओं से विशिष्ट बनाती है।

संविधान में प्रावधान किए जाने से कुछ इस तरह का भ्रम हमारे समाज में फैला कि राजनीतिक प्रयासों से समाज से अस्पृश्यता की भावना समाप्त हो गई है। लेकिन यथार्थ के धरातल पर यह सच्चाई नहीं थी। सामाजिक समस्याओं के निवारण में राजनीति एक सीमा तक ही मददगार हो सकती है। महात्मा गांधी अस्पृश्यता को हिन्दू धर्म पर कलंक मानते हैं। उन्होंने अस्पृश्यता पर विचार करते हुए कहा है , "अस्पृश्यता की प्रथा सिर्फ हिन्दू धर्म में ही है। न तो इसका बुद्धि से कोई संबंध है और न शास्त्रों में इसके लिए कोई प्रमाण है। शास्त्रों का जो थोड़ा-सा अध्ययन मैंने किया है, और शास्त्रों का जो गहरा अनुशीलन करने वालों ने मुझे बतलाया है, उस सबसे मालूम होता है कि हिन्दू धर्म में जन्मना अस्पृश्यता के लिए कोई आधार या प्रमाण नहीं है।" [7] डॉ. भीमराव अंबेडकर अस्पृश्यता की विविध पहलुओं पर विचार करते हैं। उनका मानना है की, "हिंदुओं का यह अछूतपन अद्वितीय है। संसार के इतिहास में इसका मुक़ाबला नहीं। एशिया और यूरोप की बहुत-सी जतियों की जनसंख्या से भी बड़ी जनसंख्या का "अछूतपन " अपनी जनसंख्याकी अधिकता के कारण ही अद्वितीय नहीं है ; किन्तु और दूसरे कारणों से भी अद्वितीय है।" [8] दलित साहित्यकारों ने अस्पृश्यता की घिनौनी तस्वीर को हमारे समक्ष प्रस्तुत किया। जूठन अस्पृश्यता निवारण के मिथ को तोड़ने का काम करती है। अपनी गाँव में फैली अस्पृश्यता की भावना पर विचार करते हुए लेखक कहता है कि , "अस्पृश्यता का ऐसा माहौल कि कुत्ते-बिल्ली , गाय-भैंस को छूना बुरा नहीं था लेकिन यदि चूहड़े का स्पर्श हो जाए तो पाप लग जाता था। सामाजिक स्तर पर इंसानी दर्जा नहीं था। वे सिर्फ जरूरत की वस्तु थे। काम खत्म होते ही उपयोग खत्म। इस्तेमाल करो , दूर फेंको।" [9] इस विषय में एक अन्य स्थल पर एक घटना का वर्णन करते हुए ओमप्रकाश वाल्मीकि का कथन है, "स्कूल में प्यास लगे तो हैंडपंप के पास खड़े रहकर किसी के आने का इंतज़ार करना पड़ता था। हैंडपंप छूने पर बवेला हो जाता था। लड़के तो पीटते ही थे। मास्टर लोग भी हैंडपंप छूने पर सज़ा देते थे। तरह-तरह के हथकंडे अपनाए जाते थे ताकि मैं स्कूल छोड़कर भाग जाऊँ , जिनके लिए मेरा जन्म हुआ था।" [10] अछूत को किसी भी प्रकार से पवित्र नहीं बनाया जा सकता। भीमराव अंबेडकर लिखते हैं कि , "जो हिन्दू उनका स्पर्श करते हैं वे स्नानादि के द्वारा "पवित्र" हो सकते हैं, किन्तु ऐसी कोई चीज़ नहीं जो "अछूत" को पवित्र बना सके। वे "अपवित्र '" ही पैदा होते हैं ; वे जन्मभर पवित्र बने रहते हैं; वे "अपवित्र" ही बने रहकर मर भी जाते हैं ; और वे जिन बच्चों को जन्म देते हैं वे बच्चे भी "अपवित्रता" का टीका लगाए ही जन्म ग्रहण करते हैं। यह एक स्थाई वंशानुगत कलंक है जो किसी तरह धूल नहीं सकता।"[11]

जूठन में विस्तार से इस तथ्य की पड़ताल की गई है कि दलित समुदाय बुद्धि-बल-सौन्दर्य में किसी से कमतर नहीं है। जाति को लेकर किसी भी प्रकार का हीनता बोध ओमप्रकाश वाल्मीकि में नहीं है। जाति को लेखक एक रोग मानता है। उनके

अनुसार, "जाति ही जहाँ मान-सम्मान और योग्यता का आधार हो, सामाजिक श्रेष्ठता के लिए महत्त्वपूर्ण कारक हो , वहाँ यह लड़ाई एक दिन में नहीं लड़ी जा सकती है। लगातार विरोध और संघर्ष की चेतना चाहिए जो मात्र बाह्य ही नहीं , आंतरिक परिवर्तनगामी भी हो , जो सामाजिक बदलाव को दिशा दे।" [12] वाल्मीकि उपनाम वाले प्रसंग को उदाहरणार्थ देखा जा सकता है। लेखक के अनुसार , "नाम का उत्तरार्द्ध , जिसे उपनाम या सरनेम कहा जाता है , मेरे नाम के साथ जुड़कर कई प्रकार की विषम परिस्थितियाँ उत्पन्न करने वाला सिद्ध हुआ है , अपनी जाति बोधकता के कारण। जब ये स्थितियाँ अंतर्संबंधों को प्रभावित करने लगती हैं तो इस नाम से छुटकारा पाने की सोचने लगता हूँ। लेकिन जीत उपनाम की ही हुई है। अभी तक तमाम हादसों के बाद भी मैं इसे छोड़ नहीं पाया हूँ ; बल्कि यह और अधिक आत्मीय लगने लगा है।" [13] अस्मिता की खोज में लगे एक पूरे समुदाय के दर्द को लेखक ने स्वर दिया है और अंत तक पहुँचते-पहुँचते यह स्वर इस दर्द को बदलाव की चेतना में परिवर्तित कर देता है। पूरी आत्मकथा में एक प्रतिबद्ध अंतर्दृष्टि कहीं गहरे प्रवाहित होती दिखाई देती है। यह दृष्टि अंततः अपनी पहचान को ढूँढने में सफल भी होती है।

यह स्वाभाविक तथ्य है कि हर व्यक्ति अपने से ऊपर की सीधी पर चढ़ना चाहता है। दलित वर्ग भी इसका अपवाद नहीं है, लेकिन भारतीय समाज की सामाजिक संरचना कुछ इस तरह की है अगर इस वर्ग का कोई सदस्य वैयक्तिक उन्नति करना चाहता है तो उसके सामने ऐसी अनेक कठिनाइयाँ आ जाती हैं जिनके बारे में उसने सोचा तक नहीं था। उसकी वैयक्तिक प्रगति के रास्ते में आने वाली कठिनाइयाँ सामुदायिक हैं। हर जगह उसकी जाति पहले पहुँच जाती है। दलित वर्ग के खिलाफ सक्रिय शक्तियाँ आर्थिक उन्नति में तो एक सीमा तक ही बाधा पहुंचा पाती हैं लेकिन सामाजिक प्रतिष्ठा की मांग को पूरा नहीं करने देतीं। इस परिस्थिति में दलित लेखक अपने समाज से अक्सर दूर होता चला जाता है। 'जूठन' की यही विशेषता है कि इसका लेखक अपने समाज से एक क्षण के लिए भी अलग नहीं हुआ है।

यह आत्मकथा दलित समाज की पीड़ा का पुनराख्यान है। इसमें लेखक जब अपने बीते हुए समय को पुनः जीता है तो वह और अधिक गहराई से अपने समाज से जुड़ जाता है। इस अर्थ में जूठन अपने पूरे समाज का प्रतिनिधित्व करती है। हरिनारायण ठाकुर के शब्दों में कहें हो "जूठन के माध्यम से लेखक ने भारतीय समाज, संस्कृति, धर्म और इतिहास में पवित्र तथा उत्कृष्ट समझे जाने वाले तीन प्रतीकों-क्रमशः शिक्षा संस्थान , गुरु यानी शिक्षक एवं प्रेम पर कड़ा प्रहार किया है तथा यह दिखाने की कोशिश की है कि दलित समाज को अपने व्यक्तित्व निर्माण और सामाजिक विकास की प्रक्रिया में इन तीनों प्रतीकों की नकारात्मक भूमिकाओं का सामना करना पड़ता है।" [14] इसके लेखक में सत्य कहने का साहस , ब्राह्मणवाद का विरोध करने की क्षमता और श्रेष्ठताग्रंथि के विरोध में आवाज़ उठाने की शक्ति है। लेखक की यही विशेषताएँ उसे समता के पक्ष में खड़े रहने का अडिग साहस देती हैं।

संदर्भ

1. जूठन, ओमप्रकाश वाल्मीकि, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, 1997 ई., पृष्ठ 119
2. A Caste system, as a Berreman discusses the concept, is one that is composed of ranked groups. Membership in a group is only through birth. The groups are exhaustive, exclusive, and discrete; that is, every person is a member of such a group and of only one; he is clearly recognized by others as a member of his separate group. (Society in India, David G. Mandelbaum, Popular Prakashan, Bombay, 1960. Page 663)
3. शोध संचयन (पत्रिका), Vol 1, year 1, 15 Jan 2010, (लेख-मुख्यधारा के यथार्थ), पृष्ठ 2
4. जूठन, ओमप्रकाश वाल्मीकि, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, 1997 ई., पृष्ठ 42-44
5. डॉ. आंबेडकर सामाजिक विचार एवं दर्शन (संपादक नरेंद्र जाधव), प्रभात प्रकाशन, दिल्ली, 2015, पृष्ठ 141
6. जूठन, ओमप्रकाश वाल्मीकि, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, 1997 ई., पृष्ठ 40
7. मैं गांधी बोल रहा हूँ, (संपादक-गिरिराज शरण) प्रतिभा प्रतिष्ठान प्रकाशन, दिल्ली, 2011, पृष्ठ 26
8. अछूत कौन और कैसे , भीमराव अंबेडकर (अनु. भदंत आनंद कौसल्यायन), गौतम बूक डिपो, दिल्ली, 1949, पृष्ठ 24
9. जूठन, ओमप्रकाश वाल्मीकि, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, 1997 ई., पृष्ठ 12
10. वही, पृष्ठ 13
11. अछूत कौन और कैसे , भीमराव अंबेडकर , (अनु. भदंत आनंद कौसल्यायन), गौतम बूक डिपो, दिल्ली, 1949, पृष्ठ 25
12. जूठन, ओमप्रकाश वाल्मीकि, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, 1997 ई., पृष्ठ 158
13. वही, पृष्ठ 148
14. दलित साहित्य का समाजशास्त्र , हरिनारायण ठाकुर , भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, दिल्ली, 2009, पृष्ठ 449

RRIJM 2015, All Rights Reserved